आर्य कर्मवीर सेनानी और उत्तराखण्ड के गांधी जयानन्द भारतीय

कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

वर्तमान उत्तराख्ण्ड के पौड़ी जनपद के अरकंडाई (धार की) नामक गांव में श्री छविलाल और श्रीमती रैबेली के एक कृषक परिवार में 19 अक्टूर, सन् 1881 को एक बालक का जन्म हुआ था जिसका प्यार का घरेलू नाम जेबी रखा गया था जो बाद में इस जीवन गाथा के नायक जयानन्द भारतीय कहलाये। पारिवारिक पृष्ठभूमि अत्यन्त साधारण होने के कारण उनकी कोई औपचारिक शिक्षा नहीं हो पायी और किसी प्रकार वे केवल अक्षर ज्ञान ही प्राप्त कर सके थे। युवा होने पर वे खेती बाड़ी में रुचि लेने लगे और साथ ही जागरी (गीत व संगीत के द्वारा देवी–देवताओं को प्रसन्न करने का पेशा) का काम सीख कर उसमें दक्ष हो गये। युवा अवस्था में इनका अनमेल विवाह होने के कारण पत्नी से शीघ्र ही सम्बन्ध विच्छेद हो गये और पुनः विवाह करने पर इनकी धर्म पत्नी एक कन्या को जन्म देकर कुछ वर्षों के बाद चल बसीं। अब इन्होंने कभी विवाह न करने का संकल्प लिया और अपने पिता से अनुमति लेकर नैनीतल, देहरादून और मसूरी आदि स्थानों पर रोजगार की तलाश में गये। इनके द्वारा अंग्रेजों की नौकरी भी की गई जिसके दौरान इन्होंने साफ–सफाई, उचित कार्य–व्यवहार आदि गुण सीखे। यहीं इन्होंने लिखने–पढ़ने की अच्छी आदतें सीखीं और आर्य समाज के सम्पर्क में आए। वहां पर एक आर्य सज्जन श्री टीकाराम कुकरेती ने इन्हें महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश यह कहते हुए दिया कि सबसे पहले इसका तृतीय अध्याय पढ़ें और आगे के अध्याय बाद में पढ़ें। श्री भारतीय ने ऐसा ही किया। सत्यार्थप्रकाश के तीव्र प्रकाश ने इन पर ऐसा प्रभाव डाला कि इनके जीवन की धारा ही बदल गई। जहां पहले वे देवी–देवताओं के झूठे आडम्बर के मकड़ जाल में फंसें थे अब इससे उन्हें घोर घृणा हो गई क्योंकि सच्चे परम पिता परमेश्वर से उनका परिचय हो चुका था। जन्मना जाति–पांति के आडम्बर से भी वह भली प्रकार अवगत हो चुके थे। वे अब समझ चुके थे कि पढ़ने–लिखने, विकास करने और समानता का अधिकार मनुष्य मात्र को है। वे सन् 1911 में गुरुकुल कांगडी हरिद्वार जाकर महात्मा मुंशीराम से मिले। उनसे उन्होंने यज्ञोपवीत, आर्यसमाज और श्रेष्ठ कर्मों के बारे में विस्तार से ज्ञान प्राप्त किया। महात्मा मुंशीराम ने 10, जुलाई 1911 को गुरुकुल के आचार्य श्री रामदेव से उनका यज्ञोपवीत करवाया और उनका शुद्ध नाम जयानन्द भारतीय रखा गया। वे गुरुकुल में रहकर अध्ययन करना चाहते थे परन्तु उनकी बड़ी उम्र के कारण यह सम्भव नहीं था, इसलिए मन मसोस कर वह गुरुकुल से विदा हुए। महात्मा मुंशीराम के उपदेशों से प्रभावित होकर उन्होंने दुर्गुण और दुर्व्यसनों को छोड़ने और शेष जीवन आर्यसमाज के प्रचार–प्रसार, दीन–दलितों की सेवा और समाज के उत्थान के लिए अर्पित करने का संकल्प लिया। उस दौरान पर्वतीय क्षेत्र में कृषि योग्य भूमि बहुत कम होने, उसमें ढलान के कारण प्रत्येक वर्ष मिट्टी व उपज के लिए लाभकारी तत्वों के बह जाने के कारण बहुत कम अन्न पैदा होता था जिससे सभी निवासियों की आर्थिक स्थिति कमजोर थी परन्तु शिल्पकला में निपुण लोगों के पास भूमिहीन होने या केवल रहने योग्य ही भूमि उपलब्ध होने के कारण विपन्नता अधिक थी और वे अपने जीवन निर्वाह के लिए अन्य तथाकथित उच्च वर्णों के लोगों पर निर्भर रहते थे जो न केवल उनका आर्थिक और सामाजिक शोषण करते थे अपितु उन्हें अपना दास समझते हुए हेय दृष्टि से देखते थे। आर्यसमाज के पारस पत्थर के स्पर्श से श्री भारती का जीवन स्वर्णमय हो गया। अब वह किसी भी प्रकार के तिरस्कार को न स्वयं सहने को तैयार थे और न अपने अन्य दलित, दीन, दुःखी बन्धुओं को ही तिरस्कारित व प्रताड़ित हुआ देख सकते थे। उनके मन में

जो चिनगारी उठी थी वह धीरे–धीरे पूरे गढ़वाल क्षेत्र में फैल गई। जहां उनका यह प्रचार व सेवा कार्य जोर–शोर से चल रहा था, वहीं आजीविका का कोई साधन न होने के कारण आर्थिक विपन्नता सदैव बनी रहती थी, इसलिए वे प्रथम विश्व युद्ध के अवसर पर फौज में भर्ती होकर सेवा का अवसर नहीं गंवा सकते थे। वे 10 मार्च, 1918 को सेना में भर्ती हो गये परन्तु अपने साथ सत्यार्थप्रकाश और संस्कार विधि जो उनके जीवन के अभिन्न अंग थे को भी ले गए। रात्रि के समय वे सैनिकों के लिए सत्यार्थप्रकाश का पाठ किया करते थे। जर्मनी में एक हिन्दू सैनिक की मृत्यु हो जाने पर उन्होंने अपने अधिकारियों की अनुमति लेकर उसकी अन्त्येष्टि वैदिक रीति से वेद मन्त्रों का पाठ करते हुए की थी। उनके विचारो का साथी सैनिकों पर बहुत प्रभाव पड़ा और उनमें से एक सैनिक श्री रघुवर दयाल ने तो सेवा निवृत्ति के बाद आर्य समाज की बहुत सेवा भी की थी। माता–पिता के अत्यन्त आग्रह के आगे उन्हें अन्त में झुकना पड़ा और तीसरी वे बार विवाह के बन्धन में बंध गये। उनका यह विवाह सफल रहा और उनके तीन पुत्र हुए। इस प्रकार एक पुत्री और तीन पुत्रों के वे पिता बने। पुत्री शान्ति और एक पुत्र श्री परमानन्द को उन्होंने गुरुकुल में शिक्षा दिलाई थी। उनका एक पुत्र सेना में भी नियुक्त हुआ था। श्री भारतीय ने सेना से सेवा निवृत्ति के बाद भी आर्यसमाज के प्रचार–प्रसार और समाज के दुःखी वर्ग की सेवा व सुधार का कर्य जारी रखा। उनके गांव के पौराणिक लोगों को उनके आत्म जागरण से किये जाने वाले यह सब काम पसन्द नहीं थे। उन्हें मार्ग से भटकाने के लिए एक चाल चली गई और गांव में देवपूजा का कार्यक्रम रखा गया। उस क्षेत्र के लोगों की यह मान्यता थी और अब भी है कि देवपूजा का विरोध करने वाले और इसमें सम्मिलित न होकर इसकी अवमानना करने वालों का घोर अनिष्ट होता हैं। उन्हें भी कई धमकियां व प्रताड़नाएं दी गयीं परन्तु देवपूजा और उसमें बकरों व भेड़ों की बलि दिये जाने का श्री भारतीय ने घोर विरोध किया। उस समय इस इलाके में दुगड्डा एक व्यायसायिक मण्डी के रूप में व्यस्त स्थान था जहां तिब्बत से ढाकरी व्यापारी चोर, फरण आदि मसाले लाते थे और यहां से नमक, गुड़ , तम्बाकू आदि ले जाते थे। श्री भारतीय जी ने मुख्यतः दुगड्डा को अपना कार्य क्षेत्र बनाया परन्तु वे दूर–दूर तक पर्वतीय क्षंत्रों में दलित–दुर्बलों की उन्नति और आर्य सिद्धान्तों की ज्योति जलाने के लिए भ्रमण करते रहते थे। इन यात्राओं में यज्ञोपवीत के महत्व पर अत्यधिक बल देते थे। उनके इस प्रचार कार्य विशेष रूप से दलितों को जनेऊ पहना कर पवित्र कर द्विज बनाने से उच्च वर्ण के मतान्ध लोगों के मन में उनके प्रति रोश व प्रतिकार की भावनाएं भड़क उठीं और उन्हें घाटी में धकेल कर या जहर देकर मारने के कई प्रयास हुए परन्तु दयानन्द का यह वीर सेनानी कर्तव्य मार्ग पर डटा रहा। अन्य देश भक्तों की तरह उनमें भें भी देश प्रेम की भावना कूट–कूट कर भरी थी। वे राष्ट्रीय कांग्रेस में सक्रिय सदस्य के रूप में आजादी के आन्दोलन में कूद पड़े। दुगड्डा में 30 मई, 1930 सर्व प्रथम राजनीतिक सम्मेलन हुआ था। शराब की भट्टियों पर पिकेटिंग की गई और भूमि–बन्दोबस्त में किये जा रहे अत्याचारों का घोर विरोध किया गया। इसी वर्ष 28 अगस्त को भारतीय जी ने राजकीय विद्यालय जहरीखाल के भवन पर तिरंगा झण्डा फहराया और अपने भाषणों से छात्रों को विरोध के लिए प्रेरित किया था। 1 फरवरी, सन 1932 को कांग्रेस के गैर कानूनी घोषित किये जाने के कारण उत्पन्न परिस्थितियों को देखते हुए धारा 144 लगाई गई थी। भारतीय जी द्वारा इसका उल्लंघन करने पर उन्हें पकड़ कर जेल में बन्द कर दिया और उन्हें छः माह के कठोर करावास की सजा दी गई थी। सन् 1932 में ही अंग्रेज गवर्नर सर विलियम मैलकम हैली का पौड़ी में स्वागत किया जाना था। कांग्रेस के गैर कानूनी घोषित हो जाने से उनका विरोध करने का किसी में साहस न था परन्तु इस कथा के नायक के मन में तो कुछ और ही भावनाएं हिलोरे ले रहीं थीं। 6 सितम्बर, सन् 1932 को पौड़ी में

गवर्नर को एक अभिनन्दन पत्र भेंट किया जाना था। इन पंक्तियों के लेखक ने बचपन में अनेक बार इस वृतान्त को सुना था। भारतीय जी कुछ दिन पूर्व ही जेल से छूट कर लौटे थे। वे घटना से एक दिन पूर्व रात के समय लुकते–छिपते अपने मित्र श्री मायाराम आर्य जो कलकट्रेट पौड़ी में लिपिक थे और तारा लौज पौड़ी में निवास करते थे, के घर पहुंच गये। वे अकसर जब भी पौड़ी आते तो उनके निवास पर ही ठहरते थे जहां श्री बलदेव सिहं आर्य आदि अनेक स्वतन्त्रता सेनानी आकर ठहरते व देश की आजादी के विषय में आपस में विचार–विमर्ष किया करते थे। श्री आर्य एक निष्ठावान् आर्यसमाजी व देशभक्त थे जो आर्यसमाज व राष्ट्र के लिए समर्पित थे परन्तु अंग्रेजों की सरकार के अधीन सेवामें रहने के कारण खुलकर सामने नहीं आ सकते थे। रात्रि को वहां पर विश्राम करने के उपरान्त सुबह होते ही श्री भारतीय चले गये थे परन्तु जाते हुए एक काली छत्री जो उन्होंने बड़ी हिफाजत से रखवाई थी, को ले जाना नहीं भूले थे। उस छतरी के अन्दर ही उन्होंने एक झण्डा छिपा रखा था। (स्व0 श्री शान्तिप्रकाश 'प्रेम' प्रभाकर ने उनकी जीवनी में कोतवाल सिहं नेगी के घर उनका ठहरना लिखा है। ऐसा लगता है कि श्री आर्य के सरकारी सेवक होने के कारण लोगों से उनके घर रहने का तथ्य श्री भारती ने छिपाया होगा) 6 सितम्बर 1932 को भारतीय जी आस्तीन के अन्दर तिरंगा छिपाकर ले गये थे और जैसे ही गवर्नर अभिनन्दन पत्र के प्रत्युत्तर में धन्यवाद देने हेतु खड़ा हुआ, भारतीय जी ने झण्डा निकाल कर उसे डण्डे पर लगाते हुए हाथ में ऊंचा उठा कर हवा में फहराया और ' मैलकम हैली गो बैक '....' भारत माता की जय '..... ' अमन सभा मुर्दाबाद ' आदि नारे लगाने लगे। सरकारी सिपाहियों ने उन्हें जकड़ लिया और उनके ऊपर कम्बल या चादर डालकर उनकी आवाज बन्द करने की कोशिष की परन्तु उनके द्वारा नारे लगाना बन्द न हुआ। उन्हें तत्काल थाने में ले जाकर बन्द कर दिया गया। वहां पर उनके लम्बे–लम्बे बालों को खींच कर कई दिन तक उन्हें यातनायें दी गयीं परन्तु उन्होंने यह नहीं बताया कि वे कहां ठहरे थे और इस विद्रोह में उनके साथी कौन–कौन थे। न्यायालय ने इन पर तीन सौ रुपये अर्थदण्ड करते हुए इस शर्त पर छोड़ने की पेशकश की कि वे राज्य के शुभ–चिन्तक बने रहने की गारन्टी देंगे और एक साल तक पुलिस की निगरानी में जमानत पर रहेंगे परन्तु भारतीय जी ने इन शर्तों पर रिहा होने से इनकार कर दिया, फलतः उन्हें एक वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया था। भारत छोड़ो आन्दोलन में भी उनकी सक्रिय भूमिका रही और उन पर देशद्रोह का मुकदमा चलाया गया जिसमें उन्हें दो वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। इस प्रकार उनको अप्रैल 1944 तक छः बार जेल भेजा गया और अनेक यातनायें दी गईं परन्तु यह वीर सेनानी निरन्तर राष्ट्र सेवा में लगा रहा। श्री भारतीय जी का संक्षिप्त जीवन परिचय देते समय उनके द्वारा गढ़वाल के शिल्पकारों के डोला–पालकी आन्दोलन में निभाई गई भूमिका का उल्लेख करना आवश्यक है। जैसा कि पूर्व में वर्णित किया जा चुका है, गढ़वाल के तथाकथित उच्च वर्ण के लोग इन्हें अपना गुलाम समझते थे, न केवल इनके साथ अछूत मानते हुए बर्ताव करते बल्कि उन्हें सामान्य मानवीय अधिकार भी देने को तैयार नहीं थे। गढ़वाल आदि पर्वतीय क्षेत्रों में दुर्गम मार्ग होने के कारण सभी जातियों के लोग वर–वधू को डोला–पालकी में ले जाते थे परन्तु शिल्पकारों का ऐसा करना उनको गंवारा न था। जब महर्षि दयानन्द के विचारों से इनमें जागरूकता फैली और इन्होंने भी अपने दूल्हा–दुल्हनों को डोला–पालकी में ले जाना प्रारम्भ किया तो अनेक स्थानों पर अन्य तथाकथित उच्च वर्ण के लोगों ने घोर विरोध और मारपीट की जिसके फलस्वरूप कई गिरफतारियां और मुकदमे बाजी हुईं। अब ये शिल्पकार लोग जाग उठे थे और झुकने के लिए तैयार नहीं थे इसलिए कई वर्षों तक संघर्ष चलता रहा। इस संघर्ष में श्री भारतीय ने बहुत मुख्य भूमिका निभाई थी। वे कई बार महात्मा गांधी,

श्री जवाहरलाल नेहरू, महामना मदन मोहन मालवीय और पं0 गोबिन्द बल्लभ पन्त से मिले और इस समस्या का निदान करने हेतु अप्रैल, 1946 में एक अभूतपूर्व आर्य सम्मेलन दुगड्डा में कराया। ये सब प्रयास अन्ततोगत्वा सफल हुए और उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा इस दमन को रोकने के लिए डोला–पालकी ऐक्ट बनाया गया। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद भी वे आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार–प्रसार और दीन, दुःखियों की सेवा में लगे रहे। जहां उनके अन्य साथियों ने आजादी के बाद मन्त्री आदि पद स्वीकार कर जीवन आराम और सुविधाओं के साथ बिताया वहीं इस निष्ठावान् सेनानी ने कोई भी सुविधा लेना स्वीकार नहीं किया। विपन्नता में जीवन बिताते हुए बीमार होकर 9 सितम्बर, 1952 को राष्ट्र भक्त महर्षि दयाानन्द और श्रद्धान्न्द के इस कर्मवीर सेनानी ने अपनी इहलौकिक जीवन यात्रा पूर्ण की और अनन्त यात्रा पर चल पड़ा। उनके देहावसान के बाद स्व. श्री हेमवती ननदन बहुगुणा ने कहा था, '' स्वराज के लिए छः बार जेल यातना से लेकर भरी सभा में अंग्रेज गवर्नर को तिरंगा झंण्डा दिखाकर गढ़वाल की मर्यादा को ऊंचा उठाने वाले श्री भारतीय जी सामंती समाज की देन गरीबी, अशिक्षा, जातीय भेद और जुल्मों की शिकार दबी; थकी शिल्पी जनता की आवाज और ढाल बन गये ''। भले ही कई अनाम शहीदों की तरह शासन और प्रशासन की ओर से उन्हें कोई मान्यता नहीं दी गई जबकि सवतन्त्रता संग्राम में भाग लेने वाले सामान्य कार्य कर्ताओं के नाम पर सड़कों और विश्वविद्यालयों के नाम हैं। इस राष्ट्र सेवक को हम शत.शत नमन करते हैं। वे सदा हमारे हृदयों में अमर रहेंगे।

कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री
166, ओल्ड नेहरू कालोनी
देहरादून –.248001